ॐ

अष्टम-पुष्प—

ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रन्थ-माला।

भगवान्

श्री कुन्द कुन्द-वचनामृत

———:०———

रचयिता—

निर्भीकवक्ता विद्वत्‌रत्न स्वस्ति श्री भट्टारक

श्री वीरसेन स्वामी पट्टाचार्य सेन-

गण आम्नाय सिंहासन

कारंजा-अकोला।

सुशिष्य—

ब्रह्मचारी नन्दलाल महाराज,

भिण्ड (ग्वालियर)

———०———

प्रकाशक—

ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रंथ-माला,

भिण्ड।

प्रथमावृत्ति ४००० हजार प्रति	वीर सम्वत् २४७१ ई० सन् १९४५	मूल्य

आभार-प्रदर्शन
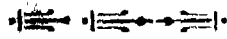
दानी—श्रीमान् सेठ कोदूलाल नन्हेलालजी जैन, जबलपुर। आपने ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रन्थ-माला की उक्त पुस्तक ४००० हजार प्रति प्रकाशनार्थ कुल रुपया सहर्ष प्रदान किया है तथा उदासीन पं० कस्तूरचन्दजी नायक ने जो सहयोग दिया है, इसके लिये ग्रन्थ-माला आप सबोंकी आभारी है।

अशा है अन्य धर्मानुरागी दानी भी आपका अनुकरण कर ग्रन्थ-माला को सदा सहायता देते रहेंगे।

ब्र० नन्दलाल।

(भिण्ड)

दो शब्द
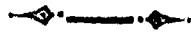
परमपूज्य भगवन् कुन्द कुन्दाचार्य रचित **"समय प्राभृत"** का पठन मनन और निदध्यासन का फल शुद्धात्मानुभव है। उसी शुद्धात्मानुभवका कुछ अंश कविता-रूपमें रचकर **श्री कुन्द कुन्द वचनामृत** नामकी छोटी-सी पुस्तक द्वारा आत्म-रसिकोंके प्रमोदार्थ उपस्थित किया जा रहा है। यह पुस्तक शुद्धात्म प्रेमियोंके हृदयको सुशोभित करने में सर्वोत्कृष्ट भूषण स्वरूप बन सकेगी। ऐसी आशा है।

एक समय ऐसा था जब **सद्-कुलोत्पन्न** नारियां अपनी सन्तानोंको नित्य-प्रति दैनिक व्यवहार द्वारा शुद्धात्मानुभव रूपी अमृत पिलाकर अमरत्व भावका भावी बनाया करतीं थी और आप मनुष्य-पर्यायको असार न बनाकर अपने कर्तव्यको समुचित रूपसे पालन कर मोक्ष दर्शिनी बनती थी, जिसका प्रमाण विद्वद्वर्य—रत्नाकर कवि-राजने भरतेश-वैभव द्वारा तथा अन्य आचार्योंने खासा दिग्दर्शन कराया है। यद्यपि जगत्प्रसिद्ध परमात्म स्वरूप की साक्षात् करानेवाली मूर्तिके नित्य-प्रति दर्शन करते हैं फिर भी वे अज्ञानसे आत्म-साक्षात करनेमें असमर्थ हो अपना स्वरूप भूल रहे हैं। अतः हे भव्यो! स्थिर चित्त हो नित्य इस पुस्तक को पाठ करो! अर्थानुभव करो। अर्थानुभव द्वारा अपने शुद्ध स्वरूप का निश्चय करनेमें जो सावधान होंगे वे ही इस पुस्तक पठन का फ़ल प्राप्त कर मेरे प्रयत्नको आदर्श बना सकेंगे और निःशंक हो मोक्ष मार्ग को प्राप्तकर कृत-कृत्य होते रहगे।

लेखक—

ब्र० नन्दलाल।

भिण्ड ग्वालियर।

महावीर-सन्देश

भव्य-सुन ! महावीर-सन्देश ।

विपुला-चल पर दिया प्रमुख जो, आत्मधर्म उपदेश ॥ ध्रु० ॥

सब-जीवो अब मुझ-सम देखो, धर श्रद्धा नहिं क्लेश ।

वीतराग ही रूप तुम्हारा, संशय तज आदेश ॥ भव्य० ॥

मोहाश्रित हो रूप निरख कर, करता नट-वत भेष ।

मुझ-सम देख ! देख ! निर्मोही, ज्ञायकता अविशेष ॥ भव्य० ॥

चार कषायों के रहने से, मलिन ज्ञान-प्रदेश ।

निर्मल-ज्ञान जान ! अवलोको, स्वच्छ-ज्ञान निज-देश ॥भव्य०॥

देव, मनुष, तिर्यंच, नारकी, पुद्गल-पिंड विशेष ।

छेद ! चार-गति पंचम-गति पति, जानो ! अपना-देश ॥भव्य०॥

दर्शन-ज्ञान चेत ! चेतन-पद, यहां न पर परवेश ।

निःप्रमाद हो स्थिर अब रहना, नहीं कल्प लवलेश ॥ भव्य० ॥

श्रुतज्ञान नहिं श्रुतके आश्रय, ज्ञानाश्रित निरदेश ।

ज्ञानी ! ज्ञान स्वरूप केवली, नन्द-वंद्य परमेश ॥ भव्य० ॥

—ब्र० नन्दलाल ।

—o—

ॐ

आव्हानन्

—:*:—

आवो ! महावीर-भगवान ॥१॥

सिद्धारथ के तुम अति प्यारे, त्रिशलाके आंखोंके तारे
बाल-सूर्य-सम अघ-हरनारे, धीर ! वीर ! गुणवान ।

आवो ! महावीर-भगवान ॥२॥

सुन ! आध्यात्मिक रस भर वाणी, महामोह मिथ्यात्व पलानी
शशि-सम उज्वल ज्योति लखानी, तुम-प्रसाद मतिवान ।

आवो ! महावीर-भगवान ॥३॥

भव्योत्तम आश्रय तुम पाया, वीर ! मोह-भट तुरत भगाया
ज्ञान-सूर्य क्षणमें प्रगटाया, तुम-सम केवल-ज्ञान ।

आवो ! महावीर-भगवान ॥४॥

मन-इन्द्रिय गोचर तुम नाहीं, शुद्ध-बोध घन रूप सदा ही
तुम वचनामृत रसके माही, अक्षय-सुख का स्थान ।

आवो ! महावीर-भगवान ॥५॥

अज्ञानी-जन दीन सदा के, पर-आश्रित निज-रूप भुला के
बँधे-गाढ़ अति निद्रा-लोक, देखो ! श्रीपति आन ।

आवो ! महावीर-भगवान ॥६॥

रागादिक-वश नित होते हैं, नित निज- अनुभव निज खोते हैं
आकुल हो निशिदिन भ्रमते हैं, तुम विन दुःख महान।

आवो ! महावीर-भगवान ॥७॥

छन सोते छन ही जगते हैं, छन हँसते छन डर भगते हैं
शाश्वत रूप नहिं लखते हैं, दो ! सन्मन्त्र महान ।

आवो ! महावीर-भगवान ॥८॥

कुमति ज्ञान का जगत पसारा, कुश्रुति का हैं शास्त्र सहारा
कुअवधि ही अज्ञान-करारा, कर ! सम्यक्त्व प्रदान।

आवो ! महावीर-भगवान ॥९॥

अति उत्तम दिन आज सुहाना, त्रिभुवन पत आवो ! इस थाना
जन्म जरा मरणादि मिटाना, जयति ! वीर-भगवान।

आवो ! महावीर-भगवान ॥१०॥

दिव्य-रूप चिन्मूर्त दिखाना, अपद विभाव अभाव लखाना
सुध रत्नत्रय रस बरषाना, नन्दालय में आन।

आवो ! महावीर-भगवान ॥११॥

ब्रह्मचारी नन्दलाल ।
(भिण्ड)

कुन्द कुन्द भावना
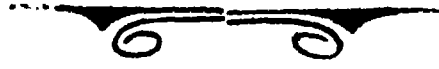
वैराग्य—स्वात्म ज्ञान के होत ही, पराधीन नहिं भाव।
उदयागत फल भोगवे, लख! वैराग्य स्वभाव ॥१॥

स्वानुभूति—अविकारी नित ज्ञानपद, ज्ञायक गुण नहिं आन।
ज्ञेय लखै! ज्ञायक रहै, स्वानुभूति परमान ॥२॥

विमल—यदपि राग परणति वहै, सही! अनादि विभाव।
निजको निज अवलोकते, प्रगटा विमल स्वभाव ॥३॥

अनाशक्ति—चारित शक्ती जगमगी, सहज वम्या परभाव।
करनी कर करता नहीं, अनाशक्ति प्रभाव ॥४॥

अमिल—दर्पण सम चेतन सदा, स्वच्छ! सदोदित आप।
क्रोधादिक प्रतिविम्ब का, होत न कभी मिलाप ॥५॥

त्याग—तीव्र मोह विषयी करै, मंदोदय व्है त्याग।
निर्मोही निज रूप लख, त्यागो विषवत राग ॥६॥

उपभोग—मति श्रुति आदिक ज्ञेय नित, उपशमादि अरु योग।
ध्यान चिन्तवन ज्ञेय लख! ज्ञायक रस नितभोग ॥७॥

कुलवान— ज्ञान भवन छोड़े नहीं, कुलवानो का न्याय।
अकुलवन्त करता सदा, कर्मोंका समुदाय ॥८॥

एकब्रह्म—चित्त-विकार लख रोगवत्, नहिं स्वभाव भ्रमकूप।
नटवत स्वांग निहार लो, एक ब्रह्म शिव रूप ॥९॥

एकाकार—परमरूप परमातमा, सदाहि एकाकार।
पराकार किम परण में! शुद्ध स्वरूप विचार ॥१०॥

दर्शनमोह— जब सूझे परमातमा, मिटै सहज संताप।
त्यागो! इक मिथ्यात्व को, दर्शन मोह प्रताप ॥११॥

मूर्छा— मूर्छा सबहि जीवमें, है अनादि सद्भाव।
स्वातम-ज्ञान विन होय किम, दर्शन-मोह अभाव ॥१२॥

उपशम— स्वातम-रस आस्वादते, मिथ्या उपशम होय।
जब सूझै परमातमा, साध्य सिद्धि तब होय ॥१३॥

पुण्य-पाप—ज्ञाता नित ही आपका, तदपि न लखता आप।
रागी हो पर भाव का बांधै पुण्य अरु पाप ॥१४॥

अचिन्त्य— कर श्रद्धा निज ज्ञान का, लखो अचिन्त्य प्रभाव।
ज्ञाता हो ज्ञायक रहे, नन्द-अनादि स्वभाव ॥१५॥

ब्रह्मचारी नन्दलाल।
(भिण्ड)

कुन्द कुन्द–अवतार

(तर्ज—जमाना रंग बदलता है)

जयति-जय ! कुन्द-कुन्द अवतार ।
भव्य ! कमल-दल को सतत ही दिनकर सम उपकार ॥ध्रु०॥
मिथ्या मतिवश जीव आप ही भ्रमे न पारावार ।
दैव योग तुम वचन श्रवणते अनुभव होत अपार ॥
कराता श्रद्धा अति अविकार ।
जयति-जय ! कुन्द-कुन्द अवतार ॥१॥
नित विभाव परणति सविकारी क्रोधादिक परिवार ।
जाना तुम सम देख ! आपको आपहि ज्ञानाकार ॥
जताता स्वानुभूति का द्वार ।
जयति-जय ! कुन्द-कुन्द अवतार ॥२॥
विना ज्ञान अज्ञान निमित वल नित्यहि मिथ्याचार ।
तुम निमित्त निज भाव शुद्ध लख प्रगटा शुद्धाचार ॥
दिखाता सिद्धो-सम आकार ।
जयति-जय ! कुन्द-कुन्द अवतार ॥३॥
धन्न धन्न अतिशय सुखकारी होता विमल-विचार ।
ज्ञान-भानु सम उदय सदाका स्वयं न किस आकार ॥
नन्दका ज्ञायक रूप अपार ।
जयति-जय ! कुन्द-कुन्द अवतार ॥४॥

ब्र० नन्दलाल ।
(भिण्ड)

जिन-दर्शन

॥ कुण्डलिया छन्द ॥

निज मुख निज दीखे विना, दर्पण का उपयोग।
दर्पण विन दीखे नहीं, सुनो! जगतके लोग॥

सुनो! जगतके लोग, लोक! जिन प्रतिमा सेती।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, परख! सुन लो मम एती॥

ज्ञान-चेतना नित्य, व्यक्त है सहज अरूपी।
मात्र लखैया जान! मान! वर्णादिक रूपी॥

निज श्रद्धा विन होय नहिं, सम्यग्दृष्टी जीव।
सम्यक् श्रद्धा हेतु है, जिन प्रतिमाहि सदीव॥

जिन प्रतिमाहि सदीव, निमित सम्यक्त्व सदाही।
आप आपको जान! मान! श्रद्धो मन मांही॥

ज्ञायक रूप स्वरूप, सहज शुद्धोऽहं लखना।
सकल विभाव अभाव, देख! नन्दामृत चखना॥

ब्र० नन्दलाल।
(भिण्ड)

ॐ

परमात्मने नमः।

ब्रह्मचारी नन्दलाल महाराज कृत—

भगवन्—

श्रीकुन्दकुन्द-वचनामृत।

मङ्गला-चरण

चामर (छन्द)

वर्द्धमान श्रीजिनेन्द्र दिव्य-रूप मंगलम्।
गौतमादि भी मुनीश ज्ञानरूप[१] मंगलम्॥
कुन्दकुन्द-वर मुनीन्द्र शुद्ध-बुद्ध मंगलम्।
वस्तुका स्वभाव ही अनाद्यनन्त मंगलम्॥

१—बन्ध-विच्छेद।

जिन[२]! भव्योंने निज-अनुभव-कर,
मोहाश्रयका[३] त्याग किया।
पूर्ण[४]-ज्ञान होनेके कारण,
आत्म-भाव सुध[५] साध लिया।
हेयादेय[६] रहा नहिं किञ्चित,
बन्ध[७]-भाव विच्छेद हुआ।
कर्म-प्रकृतियोंका रस[८] लेता,
ज्ञायक-गुण का ज्ञात[९] हुआ॥

१—ज्ञानस्वरूप। २—जिन्होंने। ३—तद्रूपताका। ४—सम्यक्। ५—शुद्ध। ६—ग्रहण, त्याग। ७—अनन्तानुबन्धी। ८—अनुभव। ९—अनुभववी।

२—कृत कृत्य ।

शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध ज्ञान-घन[१],
निर्विकल्प-पद विमल-महा[२] ।
जीवन-मुक्तभाव अवलोका,
वही धन्न कृत-कृत्य कहा ॥
दर्शन-ज्ञान स्वरूप सिद्ध-सम[३],
ज्ञान-चेतना की धारा[४] ।
व्यक्त[५]-सतत अविनाशी अनुपम,
देख ! देख ! देखन-हारा[६] ॥

३—परमात्मा ।

योग-त्रय[७] घर-वास[८] छाड़-कर,
देखि ! अयोगि-रूप अपना ।
अनुभव[९]-गोचर बना शाश्वता,
परमब्रह्म परमात्म-पना ॥
शब्द[१०]-ब्रह्म वाचक गुरुवाणी,
वाच्य[११]-अशब्द ज्ञान-गत ही ।
पठन, मनन अरु श्रवण, धारणा,
ध्यानादिक तप ज्ञान नहीं ॥

१—पुंज, समुदाय । २—अत्यन्त । ३—समान-सारखा । ४—प्रवाह-परणमन । ५—प्रगट । ६—देखनेवाला । ७—मन वचन काय । ८—स्वामित्व-पना । ९—ज्ञान गोचर । १०—दिव्यध्वुनि । ११—विषय ।

४—जिन-बिम्ब ।

ज्ञानात्मक-आत्मा सुख-रासी[१],
पर-परणति परिवार[२] नहीं ।
निज-परिणाम आप परिणमता,
परिणामी-त्रय एक कही ॥
आत्मा-ज्ञायक सहज-स्वच्छ[३] अति,
नित्य-स्व-पद जतलाय रहा ।
देखो ! इस तनु[४] माय आपको,
जिन[५]-समान निज-बिम्ब[६] कहा ॥

५—दर्पण-सम ।

निर्विकार निरग्रंथ दिगम्बर,
चित्स्वरूप मूरति जिनकी ।
वीतराग सर्वज्ञ देखि-छवि[७],
स्व-पर प्रकाशक सब[८]-जन की ॥
नित्य-व्यक्त परमात्म-रूप है,
प्रगट-बिम्ब उन भव्यों को,
दर्पण-सम[९] नित ज्ञेय प्रकाशै,
देख ! विचार ! परख[१०]-निजको ॥

१—समुदाय । २—क्रोधादिक । ३—निर्मल, स्फटिकवत् । ४—शरीर । ५—अर्हतके स्वरूपके माफिक । ६—मूरत । ७—प्रतिमा-मूरत । ८—सभी । ९—माफिक । १०—पहिचान ।

६—अचिन्त्य ।

ज्ञानी-आत्मा ज्ञान-गम्य सुन,
पचेन्द्रिन मे देख-विलास ।
रहै सदा वह अपने मांही,
ज्ञायक शक्ति सहज प्रकाश ॥
बन्ध मोक्ष संकल्प[१] त्यागते,
निर्विकल्प-गुण साध्य हुआ ।
देख ! अपूर्व-रूप[२] सद्योदित[३],
मन अचिन्त्य सुख प्राप्त हुआ ॥

७—अप्रमादी ।

छाँड़ ! प्रमाद[४] देख-पुद्गल कृत[५],
अप्रमाद हो जो ध्याता ।
ज्ञेयरु[६] ज्ञायक[७] एक रूप लख,
सुध स्वरूप-पद वह पाता ॥
नित्य निरञ्जन भव भय भञ्जन,
चिद्विलास पदवी धारी ।
बसन असन कायादि विना लख,
सुन्दर अर तृष्णा[८]-हारी[९] ॥

१—कल्पना । २—आगेनहिं देखा । ३—सदा-त्रिकाल । ४—आलस । ५—पुद्गल से बना । ६—क्रोधादि भाव । ७—ज्ञान । ८—इच्छा । ९—मिटावा ।

८—अकर्ता ।

षट्द्रव्यात्मक[१]-लोक प्रकाशक[२],
अर अलोक का जो ज्ञाता
रागद्वेष क्रोधादि भाव का,
ज्ञाता[३] है वह नहिं करता ॥
भावात्मक हो भाव[४] सदाका,
आत्म रूप ही प्रगट रहा ।
क्षीर नीरवत् देख व्यवस्था,
जिन-वरने व्यवहार कहा,

९—दर्शन मोह

जीवरु पुद्गल द्रव्य सदाका,
आस्रवादि कुछ द्रव्य नहीं ।
पुण्य पाप भी द्रव्य कहां! मति[५]—
वान, विचारो बात सही[६] ॥
भावात्मक हो उदय आवता,
बिना-ज्ञान[७] क्यों भाता[८] है ।
यह मिथ्यात्त्व सहज भावात्मक,
दर्शन-मोह कहाता है ॥

१—छह द्रव्य । २—जाननेवाला । ३—जानता । ४—क्रोधादि भाव । ५—बुद्धि । ६—ठीक । ७—अज्ञान । ८—अपनाता ।

१०—अपौरुष ।

दो[१] द्रव्यों ही एक क्षेत्र[२] हो,
नाना रूप झलकते[३] हैं ।
महज आप निज शक्तीके बल,
स्वतः सिद्ध परिणमते हैं ॥
स्व पर प्रकाशक ज्ञान मात्र बिन-
जाने पर परिणामो को ।
बिन-पौरुष[४] अपना का रहता,
भावात्मक[५]-बहु भावों को ॥

११—ज्ञान-नेत्र ।

पर एकत्त्वहि[६] भाव सदाका,
परका स्वामी जनाता है ।
इस ही कारण भव-अटवीमें[७],
स्व पर भेद नहीं पाता[८] है ॥
घर परिवार छाँड़[९] बन जाता,
अर व्रत तप बहु कर लेता ।
स्व पर प्रकाशक ज्ञान-नेत्र बिन,
मोक्ष मार्ग का नहिं नेता[१०] ॥

---

१ जीव पुद्गल । २—स्थान । ३—भाषते । ४—बिना पुरुषार्थके । ५—क्रोधादिक । ६—तद्रूपता । ७ संसारवन । ८—मिलता । ९—त्याग । १० अधिकारी-पात्र ।

१२—इन्द्रिय-ज्ञान।

ज्ञान-क्षयोप्शम सभी जीव का,
निमित इन्द्रियां परिणमता।
तिस कारण जानें ततक्षण ही,
व्यक्त ज्ञान नित लख[१]-सकता॥
क्रम-वर्ती पन रूप ज्ञानका,
मन-पर्यय तक रहा करै।
केवल-ज्ञान प्रगट होते ही,
क्रम विनाश प्रिय[२] सहज-वरै[३]॥

१३—स्वभाव।

जल-कल्लोल रूप परिणमता,
अग्नि आदि संयोग जभी।
वही नीर स्थिर आपही प्रगटा,
लख! स्वभाव नाशै[४] न कभी॥
पर्यय नित्य तदपि क्रम[५]-वर्तें,
ता कारण बहु[६]-देख रहा।
विनश[७]-विभाव रूप जो प्रगटा,
वह स्वभाव जिन-देव[८] कहा॥

१—जान-सकता। २—मोक्ष-लक्ष्मी। ३—प्राप्त करै। ४—नाश-अभाव। ५—एकके बाद एक। ६—अनेक। ७—विभावोंका नास होनेपर। ८—जिनेन्द्र देवने।

१४—ज्ञानही-ज्ञायक ।

आत्मा-ज्ञान स्वरूप नित्य[१] है,
मति श्रुति आदि न रूप कहीं ।
मति श्रुतादि बहु देख ज्ञानको,
पर निमित्त परिणमन सही ॥
ज्ञान ही ज्ञायक रूप सदाका,
स्वपर-प्रकाशक आप-बना ।
भेद-छोड़[२] ! निर्भेद जान कर,
भ्रम[३]-विनाश लख[४] ! को अपना ।

१५—पाप-नाशक ।

शुभ अर शुद्ध-भाव होने को,
कारण रूप बिम्ब[५] लखना ।
जिन-मन्दिर में सदा विराजै,
स्वच्छ[६]-स्फटिक-वत् भव्य-जना[७] ॥
अंग[८]-मात्र जब रूप निरखता[९],
तब बहिरात्म भाव जानों ।
शुभ-का कारण होय सर्वथा,
पाप-विनाशक ही मानो ॥

१—अनादि । २—भेदोंको उपेक्षा कर । ३—भूल । ४—देख । ५—छाया-प्रतिमा । ६—रागादि रहित । ७—भव्य-जीवों । ८—देह । ९—देखता ।

१६—वीतरागानुभव ।

वही-बिम्ब[१] अन्तर-दृष्टी रख,
देखोगे जब उस तनु को ।
राग द्वेष आदिक मल बिन ही,
वीत-राग भाषै मनु को ॥
आत्मा वीतराग तनु[२] माहीं,
तनु से भिन्न सिद्ध-भगवान ।
छांड़-विचार! शुद्ध लख! बुधजन,
देख! कौन है सिद्ध समान ॥

१७—क्यों-सोता ।

तनु-मन्दिर में देव देख लो,
आत्म आप[४] प्रगटाता है ।
ज्ञेयाश्रयि तद् उदय नित्य-लख ।
ज्ञायक-रस बरसाता[५] है ।
विन-विकल्प नित देख अरूपी,
बिना चिन्ह चिन्हित होता ।
स्वासो-स्वास लखाता[६] फिरता,
देख! परख[७]! अब[८] क्यों-सोता[९] ॥

१—प्रतिमा-मूरत । २—मन । ३—शरीर । ४—स्वतः खुद । ५—परणमता । ६—अनुभवता । ७—पहचान । ८—अभी । ९—अचेत हो रहा है ।

१८—परमात्मानुभव ।

केवल-ज्ञानी ज्ञान-स्वरूपी,
तनु-बिन सूक्ष्म[१] दिखाता है ।
पुण्य-पाप फल आस्वादन[२] में,
अनुभव मात्र जताता है ॥
अनुभव-ग्राही[३] ज्ञान-स्वरूपी,
जान ! जान ! परमात्माको ।
शुद्ध-निरञ्जन सुध-उपयोगी,
देख-सदा विज्ञात्मा[४] को ॥

१९—कुशील ।

जो कुशील-भावों का स्वामी,
वह मिथ्यात्वि तरसता[५] है ।
पर-वनिता[६] का रूप निरख कर,
दिन प्रति रात्रि बिलखता[७] है ॥
बिन-स्वामित्व भोग आकांक्षा,
करता वह मिथ्या-दृष्टी ।
पाप बीजका भाव[८] न त्यागा,
क्यों-कर हो सम्यग्दृष्टी ॥

१—ज्ञायक-भाव । २—अनुभव । ३—जानना । ४—ज्ञानी । ५—पछताता । ६—परस्त्री । ७—बेचैनता । ८—मिथ्याभाव ।

२०—ज्ञान-वैराग्य ।

निज-स्वभावका स्वामी बनकर,
अखिल[१]-भाव का त्यागी हो ।
दिन-कर[२] सम निज-रूप निरख[३] कर,
सहज क्यों न वैरागी हो ॥
उदया-गत जो भाव-कर्म है,
आप रूप ही भाषै हैं ।
भेद-ज्ञान सामर्थ प्राप्त कर,
पर—एकत्व[४] विनाशै है ॥

२१—भाव-कर्म ।

सकल[५]-ज्ञेय अर ज्ञायक निज गुण,
तदपि मूल[६] अज्ञान महा[७] ।
भई एकता पर-ज्ञेयों में,
भाव-बद्ध यों सहज कहा ॥
मिथ्यात्वी हो जीव आप ही,
भाव-कर्म निज मानै है ।
ता कारण भव[८]-वास बढ़ै जब,
सुख-दुख अपना जानै है ॥

१—सर्व-सम्पूर्ण । २—सूर्य । ३—पहचान । ४—स्वामित्व । ५—सम्पूर्ण-दृश्य । ६—जड़-मुख्य । ७—महान् । ८—संसार

२२—अनादि-भूल ।

यह आनादि की भूल-वासना,
स्वतः[१]-सिद्ध परिणमता है ।
निज-कृत दोष लेश बिन देखें,
पर-विभाव में रमता[२] है ॥
निमित और नैमित्तिक परिणति,
निमिताश्रय ही होता है ।
अन्य अन्य का करता नाहीं,
देख ! समय क्यों खोता[३] है ॥

२३—त्यागी-हो ।

आत्म-ज्योति साध्य[४]-कर देखो,
निज-गुण अपना ज्ञान सदा ।
पर-भावों से भिन्न शाश्वता[५],
एक मेक नहिं होय कदा[६] ॥
महिमा अनुपम सदा विराजै,
देख ! देख ! पर[७]-त्यागी हो ।
नगर-"कलोल" आय भवि-वृन्दों,
रचा[८] "नन्द[९]"-निज-स्वादी[१०] हो ॥

१—स्वाभाविक । २—अपनाता । ३—गमाता । ४—अनुभव । ५—हमेशा, त्रिकाल । ६—कभी । ७—परभावोंका । ८—रचना । ९—ब्रह्मचारी नन्दलाल । १०—अनुभवी ।

दोहा—

अकस्मात[1] आते हुये,
नगर-"कलोल" मंझार।
जिन-मन्दिर में ठहरते[2],
आये सब नर नार॥
भव्य धणिक गुणवान अर,
रसिक-आत्म-विज्ञान।
शुद्धात्मिक उपदेश सुन,
चित-प्रमोद अमलान॥
कुन्द-कुन्द वचना-मृती,
रची[3] यह संगति पाय।
पढ़ै सुनै चित-आचरै,
प्रगटै अनुभव ताय॥
कार्तिक सुध[4] अष्टमि दिना,
और शुक्र शुभ-वार।
चौबिसौ—उनहत्तरी,
सम्वत्-वीर विचार॥

॥ इति सम्पूर्णम् ॥

१—बिना किसी कारणके। २—ठहरनेसे। ३—रचनाकी। ४—शुक्र-पक्ष।

दीक्षा-गुरु—
स्वस्ति श्री भट्टारक श्री वीर सेन स्वामी पट्टाचार्य सिंहासन कारंजा—अकोला।

वंशावली—

जाती-गोल सिंघारे, गोत्र—सिंघई।

दीक्षा-काल—
सन् १६२४। वीर सम्वत् २४५० ब्र० नन्दलालका।

नोट—निवास स्थान ग्राम - बड़ेपुरा जि०इटावा यू०पी०। यहां भाई असर्फीलालजी सपरिवारके रहते हैं। भाई हजारीला और असर्फीलाल ने भिण्ड,स्टेट ग्वालियरमें सन् १९४३ माह फरवरीमें १००८ श्रीजिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराया